

९. श्रीरेवतीराज्ञ्याः कथा

प्रणम्य परया भक्त्या जिनेन्द्रं त्रिजगद्धितम् । कथाममूढदृष्टेश्च रेवत्या रचयाम्यहम् ॥१॥
 अत्रैव विजयार्धस्थ-दक्षिणश्रेणिसंस्थिते । मेघकूटपुरे राजा नाम्ना चन्द्रप्रभः सुधीः ॥२॥
 प्राज्यं राज्यं प्रकुर्वाणश्चैकदा स खगेश्वरः । चन्द्रशेखरपुत्राय दत्त्वा राज्यं सुधार्मिकः ॥३॥
 यात्रां कुर्वज्जिनेन्द्राणां महातीर्थेषु शर्मदाम् । गत्वा दक्षिणदेशस्थ-मथुरायां स्वपुण्यतः ॥४॥
 गुप्ताचार्यमुनेः पार्श्वे श्रुत्वा धर्मकथास्ततः । प्रोक्तः परोपकारोत्र महापुण्याय भूतले ॥५॥
 इति ज्ञात्वा तथा तीर्थयात्रार्थं श्रीजिनेशिनाम् । काश्चिद्विद्या दधानोपि क्षुल्लको भक्तितोऽभवत् ॥६॥
 एकदा तीर्थयात्रार्थमुत्तरां मथुरां प्रति । गन्तुकामेन तेनोच्चैर्गुरुः पृष्ठः प्रणम्य च ॥७॥
 किं कस्य कथ्यते देव भवद्भिः करुणापरैः । स प्राह परमानन्दाद् गुप्ताचार्यो विचक्षणः ॥८॥
 सुव्रताख्यमुनेर्वाच्या नतिर्मे गुणशालिनः । धर्मवृद्धिश्च रेवत्याः सम्यक्त्वासक्तचेतसः ॥९॥
 त्रिःपृष्टेन तदेवोच्चैराचार्येण प्रजल्पितम् । ततश्चन्द्रप्रभः सोपि क्षुल्लको निजचेतसि ॥१०॥

९. रेवती रानी की कथा

संसार का हित करने वाले जिनभगवान् को परम भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अमूढदृष्टि अंग का पालन करने वाली रेवती रानी की कथा लिखता हूँ। विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नाम का एक सुन्दर शहर है। उसके राजा हैं चन्द्रप्रभ। चन्द्रप्रभ ने बहुत दिनों तक सुख के साथ अपना राज्य किया। एक दिन वे बैठे हुए थे कि एकाएक उन्हें तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई। राज्य का कारोबार अपने चन्द्रशेखर नाम के पुत्र को सौंपकर वे तीर्थयात्रा के लिए चल दिये। वे यात्रा करते हुए दक्षिण मथुरा में आये। उन्हें पुण्य से वहाँ गुप्ताचार्य के दर्शन हुए। आचार्य से चन्द्रप्रभ ने धर्मोपदेश सुना। उनके उपदेश का उन पर बहुत असर पड़ा। वे आचार्य के द्वारा—

प्रोक्तः परोपकारोऽत्र महापुण्याय भूतले । -ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात् परोपकार करना महान् पुण्य का कारण है, यह जानकर और तीर्थयात्रा करने के लिए एक विद्या को अपने अधिकार में रखकर क्षुल्लक बन गये ॥१-६॥

एक दिन उनकी इच्छा उत्तर मथुरा की यात्रा करने की हुई। जब वे जाने को तैयार हुए तब उन्होंने अपने गुरु महाराज से पूछा—हे दया के समुद्र! मैं यात्रा के लिए जा रहा हूँ, क्या आपको कुछ समाचार तो किसी के लिए नहीं कहना है? गुप्ताचार्य बोले—मथुरा में एक सूरत नाम के बड़े ज्ञानी और गुणी मुनिराज हैं, उन्हें मेरा नमस्कार कहना और सम्यग्दृष्टिनी धर्मात्मा रेवती के लिए मेरी धर्मवृद्धि कहना ॥७-९॥

क्षुल्लक ने और पूछा कि इसके सिवा और भी आपको कुछ कहना है क्या ? आचार्य ने कहा

भव्यसेनमुनेरेका-दशाङ्गश्रुतधारिणः। अन्येषामपि न प्रोक्तं किञ्चिदत्रास्ति कारणम् ॥११॥
 सम्प्रधार्येति गत्वा च तत्र सुव्रतसन्मुनेः। प्रोक्त्वा तद्वन्दनां तस्य तुष्टो वात्सल्यतस्तराम् ॥१२॥
 ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः। साधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले ॥१३॥
 ततोऽसौ क्षुल्लकश्चापि विनोदेन विशिष्टधीः। लिङ्गमात्रमुनेर्भव्य-सेनस्य वसतिं गतः ॥१४॥
 तेन विद्याप्रमत्तेन तस्मै सुब्रह्मचारिणे। न दत्ता धर्मवृद्धिश्च धिग्वर्गं कष्टकोटिदम् ॥१५॥
 यत्र वाक्येपि दारिद्र्यं विवेकविकलात्मनि। प्राघूर्णकक्रिया तत्र स्वप्ने स्यादपि दुर्लभा ॥१६॥
 सर्वदोषापहं जैनं ज्ञानं तस्य मदोभवः। सत्यं पुण्यविहीनानाममृतं च विषायते ॥१७॥
 ततस्तस्य परीक्षार्थं बहिर्भूमिं प्रगच्छतः। प्रातः कुण्डीं समादाय पृष्ठतश्चलितो व्रती ॥१८॥
 मार्गे स्वविद्यया तस्य ब्रह्मचारी गुणोज्ज्वलः। कोमलैर्हरितैः स्निग्धैस्तृणाङ्कुरकदम्बकैः ॥१९॥
 आच्छादितं महीपीठं दर्शयामास सर्वतः। तद्विलोक्य महीपीठं भव्यसेनो विनष्टधीः ॥२०॥

नहीं। तब क्षुल्लक ने विचारा कि क्या कारण है जो आचार्य ने एकादशांग के ज्ञाता श्री भव्यसेन मुनि तथा और-और मुनियों की रहते उन्हें कुछ नहीं कहा और केवल सूरत मुनि और रेवती के लिए ही नमस्कार किया तथा धर्मवृद्धि दी ? इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। अस्तु। जो कुछ होगा वह आगे स्वयं मालूम हो जायेगा। यह सोचकर चन्द्रप्रभ क्षुल्लक वहाँ से चल दिये। उत्तर मथुरा पहुँचकर उन्होंने सूरत मुनि को गुप्ताचार्य की वन्दना कह सुनाई। उससे सूरत मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने चन्द्रप्रभ के साथ खूब वात्सल्य का परिचय दिया। उससे चन्द्रप्रभ को बड़ी खुशी हुई। बहुत ठीक कहा है ॥१०-१२॥

ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः।

साधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले ॥ -ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात् संसार में उन्हीं का जन्म लेना सफल है जो धर्मात्माओं से वात्सल्य-प्रेम करते हैं।

इसके बाद क्षुल्लक चन्द्रप्रभ एकादशांग के ज्ञाता, पर नाम मात्र के भव्यसेन मुनि के पास गये। उन्होंने भव्यसेन को नमस्कार किया। पर भव्यसेन मुनि ने अभिमान में आकर चन्द्रप्रभ को धर्मवृद्धि तक भी न दी। ऐसे अभिमान को धिक्कार है जिन अविचारी पुरुषों के वचनों में भी दरिद्रता है जो वचनों से भी प्रेमपूर्वक आये हुए अतिथि से नहीं बोलते-वे उनका और क्या सत्कार करेंगे ? उनसे तो स्वप्न में भी अतिथिसत्कार नहीं बन सकेगा। जैन शास्त्रों का ज्ञान सब दोषों से रहित है, निर्दोष है। उसे प्राप्त कर हृदय पवित्र होना ही चाहिए। पर खेद है कि उसे पाकर भी मान होता है। पर यह शास्त्र का दोष नहीं किन्तु यों कहना चाहिए कि पापियों के लिए अमृत भी विष हो जाता है। जो हो, तब भी देखना चाहिए कि इनमें कुछ भी भव्यपना है भी या केवल नाम मात्र के ही भव्य हैं? यह विचार कर दूसरे दिन सबेरे जब भव्यसेन कमण्डलु लेकर शौच के लिए चले तब उनके पीछे-पीछे चन्द्रप्रभ

एते त्वेकेन्द्रिया जीवाः प्रोक्ताः सन्ति जिनागमे। इत्युक्त्वात्रारुचिं कृत्वा गतस्तेषां तदोपरि ॥२१॥
ततः शौचक्षणे सोपि मायया कुण्डिकाजलम्। शोषयित्वा जगादैवं भो मुने नात्र विद्यते ॥२२॥
कुण्डिकायां जलं तस्मादेतस्मिंश्च सरोवरे। शौचं मृत्तिकया सार्द्धं कुरु त्वं सुमनोहरे ॥२३॥
भवत्वेवं भणित्वेति तत्र शौचं चकार सः। किं करोति न मूढात्मा कार्यं मिथ्यात्वदूषितः ॥२४॥
न स्यान्मुक्तिप्रदं ज्ञान-चारित्रं दुर्दशामपि। उद्गतो भास्करश्चापि किं घूकस्य सुखायते ॥२५॥
मिथ्यादृष्टिश्रितं शास्त्रं कुमार्गाय प्रवर्तते। तथा मृष्टं भवेत्कष्टं सुदुग्धं तुम्बिकागतम्? ॥२६॥
इत्यादिकं विचार्योच्चैः स्वचित्ते चतुरोत्तमः। मिथ्यादृष्टिं परिज्ञात्वा तं कुमार्गविधायिनम् ॥२७॥
भव्यसेनस्य तस्यैवा-भव्यसेन इति व्रती। चक्रे नाम दुराचारात्किं न कष्टं प्रवर्तते ॥२८॥

क्षुल्लक भी हो लिए। आगे चलकर क्षुल्लक महाशय ने अपने विद्याबल से भव्यसेन के आगे की भूमि को कोमल और हरे-हरे तृणों से युक्त कर दिया। भव्यसेन उसकी कुछ परवाह न कर और यह विचार कर कि जैनशास्त्रों में तो इन्हें एकेन्द्री कहा है, इनकी हिंसा का विशेष पाप नहीं होता, उस पर से निकल गए। आगे चलकर जब वे शौच हो लिए और शुद्धि के लिए कमण्डलु की ओर देखा तो उसमें जल नहीं और वह औंधा पड़ा हुआ है, तब तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। इतने में एकाएक क्षुल्लक महाशय भी उधर आ निकले। कमण्डलु का जल यद्यपि क्षुल्लकजी ने ही अपने विद्याबल से सुखा दिया था, तब भी वे बड़े आश्चर्य के साथ भव्यसेन से बोले-मुनिराज, पास ही एक निर्मल जल का सरोवर भरा हुआ है, वहीं जाकर शुद्धि कर लीजिए न? भव्यसेन ने अपने पदस्थ पर, अपने कर्तव्य पर कुछ भी ध्यान न देकर जैसा क्षुल्लक ने कहा, वैसा ही कर लिया। सच बात तो यह है- ॥१३-२३॥

किं करोति न मूढात्मा कार्यं मिथ्यात्वदूषितः।

न स्यान्मुक्तिप्रदं ज्ञानं चरित्रं दुर्दशामपि॥

उद्गतो भास्करश्चापि किं घूकस्य सुखायते।

मिथ्यादृष्टेः श्रुतं शास्त्रं कुमार्गाय प्रवर्तते।

यथा मृष्टं भवेत्कष्टं सुदुग्धं तुम्बिकागतम् ॥ -ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात् मूर्ख पुरुष मिथ्यात्व के वश होकर कौन बुरा काम नहीं करते ? मिथ्यादृष्टियों का ज्ञान और चारित्र मोक्ष का कारण नहीं होता। जैसे सूर्य के उदय से उल्लू को कभी सुख नहीं होता। मिथ्यादृष्टियों का शास्त्र सुनना, शास्त्राभ्यास करना केवल कुमार्ग में प्रवृत्त होने का कारण है। जैसे मीठा दूध भी तूबड़ी के सम्बन्ध से कड़वा हो जाता है। इन सब बातों को विचार क्षुल्लक ने भव्यसेन के आचरण से समझ लिया कि ये नाम मात्र के जैनी हैं, पर वास्तव में इन्हें जैनधर्म पर श्रद्धान नहीं, ये मिथ्यात्वी हैं। उस दिन से चन्द्रप्रभ ने भव्यसेन का नाम अभव्यसेन रखा। सच बात है दुराचार से क्या नहीं होता ? ॥२४-२८॥

ततोऽन्यस्मिन्दिने सोऽपि ब्रह्मचारी शुचिव्रतः। वरुणाख्यमहीनाथ-राज्ञी या रेवती सती ॥२९॥
 तस्याश्चापि परीक्षार्थं पूर्वस्यां दिशि मायया। पद्मस्थितं चतुर्वक्त्रं महायज्ञोपवीतकम् ॥३०॥
 वेदध्वनिसमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम्। ब्रह्मणो रूपमादाय संस्थितो निजलीलया ॥३१॥
 तदाकर्ण्य च भूपाल-भव्यसेनादयो जनाः। गत्वा तद्वन्दनां चक्रुः प्रमोदेन जडाशयाः ॥३२॥
 तदा वरुणभूपेन प्रेर्यमाणापि रेवती। सम्यक्त्वरत्नसंयुक्ता जिनभक्तिपरायणा ॥३३॥
 मोक्षे तथात्मनि ज्ञाने वृत्ते श्रीवृषभेश्वरः। ब्रह्मा जिनागमे चेति सम्प्रोक्तो न परो नरः ॥३४॥
 अयं कोऽपि महाधूर्तो जनानां चित्तरञ्जकः। इत्युक्त्वा सा गता नैव तत्र राज्ञी विचक्षणा ॥३५॥
 तथान्ये दिवसे सोऽपि दक्षिणस्यां दिशि व्रती। गरुडस्थं चतुर्बाहु-शङ्खचक्रगदान्वितम् ॥३६॥
 लसत्खड्गेन संयुक्तं सर्वदैत्यभयप्रदम्। दर्शयामास गूढात्मा वैष्णवं रूपमद्भुतम् ॥३७॥
 पश्चिमस्यां दिशि प्रौढं वृषारूढं तथान्यदा। पार्वतीवदनाम्भोज-समीक्षणसमन्वितम् ॥३८॥
 जटाजूटशिरोदेशं लम्बोदरविराजितम्। रूपं माहेश्वरं तेन दर्शितं च सुरैः स्तुतम् ॥३९॥
 ततोऽन्यस्मिन्दिने धीमा-नुत्तरस्यां दिशि स्फुरत्। समवादिसृतिस्थं च प्रातिहार्यैर्विभूषितम् ॥४०॥
 मानस्तंभादिभिर्मिथ्या-दृशां चेतोविडम्बनम्। सुरासुरनराधीश-समर्चितपदद्वयम् ॥४१॥

क्षुल्लक ने भव्यसेन की परीक्षा कर अब रेवती रानी की परीक्षा करने का विचार किया। दूसरे दिन उसने अपने विद्याबल से कमल पर बैठे हुए और वेदों का उपदेश करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा का वेष बनाया और शहर से पूर्व दिशा की ओर कुछ दूरी पर जंगल में वह ठहरा। यह हाल सुनकर राजा, भव्यसेन आदि सभी वहाँ गए और ब्रह्माजी को उन्होंने नमस्कार किया। उनकी चरण वंदना कर वे बड़े खुश हुए। राजा ने चलते समय अपनी प्रिया रेवती से भी ब्रह्माजी की वन्दना के लिए चलने को कहा था, पर रेवती सम्यक्त्वरत्न से भूषित थी, जिनभगवान् की अनन्यभक्त थी इसलिए वह नहीं गई। उसने राजा से कहा—महाराज, मोक्ष और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र को प्राप्त कराने वाला सच्चा ब्रह्मा जिनशासन में आदि जिनेन्द्र कहा गया है, उसके सिवा अन्य ब्रह्मा हो ही नहीं सकता और जिस ब्रह्मा की वन्दना के लिए आप जा रहे हैं, वह ब्रह्मा नहीं है किन्तु कोई धूर्त ठगने के लिए ब्रह्मा का वेष लेकर आया है। मैं तो नहीं चलूँगी ॥२९-३५॥

दूसरे दिन क्षुल्लक ने गरुड़ पर बैठे हुए, चतुर्बाहु, शंख, चक्र, गदा आदि से युक्त और दैत्यों को कँपाने वाले वैष्णव भगवान् का वेष बनाकर दक्षिण दिशा में अपना डेरा जमाया ॥३६-३७॥

तीसरे दिन उस बुद्धिमान् क्षुल्लक ने बैल पर बैठे हुए, पार्वती के मुख कमल को देखते हुए, सिर पर जटा रखाये हुए, गणपति युक्त और जिन्हें हजारों देव आ-आकर नमस्कार कर रहे हैं, ऐसा शिव का वेष धारण कर पश्चिम दिशा की शोभा बढ़ाई ॥३८-३९॥

चौथे दिन उसने अपनी माया से सुन्दर समवसरण में विराजे हुए, आठ प्रातिहार्यों से विभूषित, मिथ्यादृष्टियों के मान को नष्ट करने वाले मानस्तंभादि से युक्त, निर्ग्रन्थ और जिन्हें हजारों देव,

निर्ग्रन्थादिगुणोपेतं रूपं तीर्थेशिनः शुभम्। विद्यया दर्शयामास स क्षुल्लको जगदुत्तमम् ॥४२॥
तदानन्दभरेणोच्चैर्वरुणाख्यमहीभुजा। साद्धं सर्वजनाः शीघ्रं भव्यसेनादयो गताः ॥४३॥
तद्भक्त्यर्थं तथा पौरैः प्रेर्यमाणापि रेवती। जगाद त्रिजगत्सार-सम्यक्त्वेन विराजिता ॥४४॥
अहो जिनागमे प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिरेव च। श्रीमत्तीर्थकरा देवाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः ॥४५॥
नवैव वासुदेवाश्च रुद्राश्चैकादश स्मृताः। ते सर्वे तु यथास्थानं सम्प्राप्ताः स्वगुणैः क्रमात् ॥४६॥
अतः कोपि समायातो मूढानां मूढताप्रदः। जनानां वञ्चने चंचु-रेष पाखण्डमण्डितः ॥४७॥
इत्युक्त्वा सा स्थिता गेहे राज्ञी सम्यक्त्वशालिनी। किं कदा चलिता वातैर्निश्चला मेरुचूलिका ॥४८॥
ततः क्षुल्लकरूपेण स व्रती मायया पुनः। महाव्याधिग्रहग्रस्त-परेद्युर्व्रतभूषितः ॥४९॥
रेवत्या प्राङ्गणे चर्या-वेलायां भोजनाय च। आगच्छन्मूर्च्छयाक्रान्तः स पपात महीतले ॥५०॥
तं विलोक्य तदा राज्ञी रेवती धर्मवत्सला। हा हा कारं विधायोच्चैः शीघ्रमागत्य भक्तितः ॥५१॥
कृत्वा सचेतनं चारु-शीतवातादिभिस्ततः। नयति स्म गृहान्तस्तु महाकारुण्यमण्डिता ॥५२॥
सा तस्मै प्रासुकाहारं सरसं विधिपूर्वकम्। ददौ कारुण्ययुक्तानां युक्तं दाने मतिः सदा ॥५३॥

विद्याधर, चक्रवर्ती आ-आकर नमस्कार करते हैं, ऐसा संसार श्रेष्ठ तीर्थकर का वेष बनाकर उत्तर दिशा को अलंकृत किया। तीर्थकर भगवान् का आगमन सुनकर सबको बहुत आनन्द हुआ। सब प्रसन्न होते हुए भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना करने को गए। राजा, भव्यसेन आदि भी उनमें शामिल थे। तीर्थकर भगवान् के दर्शनों के लिए भी रेवती रानी को न जाती हुई देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुतों ने उससे चलने के लिए आग्रह भी किया, पर वह न गई कारण, वह सम्यक्त्वरूप मौलिक रत्न से भूषित थी, उसे जिनभगवान् के वचनों पर पूरा विश्वास था कि तीर्थकर परम देव चौबीस ही होते हैं और वासुदेव नौ और रुद्र ग्यारह होते हैं। फिर उनकी संख्या को तोड़ने वाले ये दसवें वासुदेव, बारहवें रुद्र और पच्चीसवें तीर्थकर आ कहाँ से सकते हैं? वे तो अपने-अपने कर्मों के अनुसार जहाँ उन्हें जाना था वहाँ चले गए। फिर यह नई सृष्टि कैसी? इनमें न तो कोई सच्चा रुद्र है, न वासुदेव है और न तीर्थकर है किन्तु कोई मायावी ऐन्द्रजालिक अपनी धूर्तता से लोगों को ठगने के लिए आया है। यह विचार कर रेवती रानी तीर्थकर की वन्दना के लिए भी नहीं गई। सच है कहीं वायु से मेरु पर्वत भी चला है? ॥४०-४८॥

इसके बाद चन्द्रप्रभ, क्षुल्लक वेष ही में, पर अनेक प्रकार की व्याधियों से युक्त तथा अत्यन्त मलिन शरीर होकर रेवती के घर भिक्षा के लिए पहुँचे। आँगन में पहुँचते ही वे मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर धड़ाम से गिर पड़े। उन्हें देखते ही धर्मवत्सला रेवती रानी हाय-हाय कहती हुई उनके पास दौड़ी गई और बड़ी भक्ति और विनय से उसने उन्हें उठाकर सचेत किया। इसके बाद अपने महल में ले जाकर बड़े कोमल और पवित्र भावों से उसने उन्हें प्रासुक आहार कराया। सच है जो दयावान् होते हैं उनकी बुद्धि दान देने में स्वभाव ही से तत्पर रहती है ॥४९-५३॥

भुक्त्वाहारं व्रती सोपि मायया प्रचुरं पुनः। चकार वमनं भूरि पूतिगन्धं सुदुस्सहम् ॥५४॥
 अपथ्यं हा मयादत्तं पापिन्या व्रतिनेऽशनम्। इत्यात्मनो महानिन्दां कुर्वन्ती रेवती सती ॥५५॥
 दूरीकृत्य तदा वान्तिं भक्त्या निःशङ्कमानसा। सुखोष्णतोयमादाय तद्वपुः क्षालनं व्यधात् ॥५६॥
 तदा चन्द्रप्रभो सोपि ब्रह्मचारी दृढव्रतः। तस्याः सद्भक्तिमालोक्य सुधीर्हृष्टा स्वचेतसि ॥५७॥
 तां मायामुपसंहृत्य संजगाद लसद्वचः। महासन्तोषसन्दोह-दायकः परमादरात् ॥५८॥
 भो देवि त्रिजगत्सार-गुप्ताचार्यस्य मदगुरोः। धर्मवृद्धिः स्फुरत्सिद्धिः पुनातु तव मानसम् ॥५९॥
 पूजा श्रीमज्जिनेन्द्राणां त्वन्नाम्ना या मया कृता। धर्मानुरागतः सा ते भूयात्कल्याणदायिनी ॥६०॥
 अमूढत्वं त्रिजगत्सारं संसाराम्भोधिपारदम्। दृष्टं मया तवागत्य व्यक्तं नाना प्रकारकैः ॥६१॥
 अतस्ते त्रिजगत्पूज्यं सम्यक्त्वं केन वर्ण्यते। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां चरणार्चनकोविदे ॥६२॥
 इत्यादिकं प्रशस्योच्चै-स्तां देवीं गुणशालिनीम्। प्रोक्त्वा सर्वं च वृत्तान्तं स्वस्थानं स व्रती गतः ॥६३॥
 ततो वरुणभूपालः सूनवे शिवकीर्तये। दत्त्वा राज्यं जगद्वन्द्यं तपो धृत्वा जिनोदितम् ॥६४॥
 जातो माहेन्द्रकल्पेसौ देवो दिव्याङ्गभासुरः। श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्ज-पूजनेऽतीव तत्परः ॥६५॥

क्षुल्लक को अब तक भी रेवती की परीक्षा से सन्तोष नहीं हुआ। सो उन्होंने भोजन करने के साथ ही वमन कर दिया, जिसमें अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही थी। क्षुल्लक की यह हालत देखकर रेवती को बहुत दुःख हुआ। उसने बहुत पश्चाताप किया कि न जाने क्या अपथ्य मुझ पापिनी के द्वारा दे दिया गया, जिससे इनकी यह हालत हो गई मेरी इस असावधानता को धिक्कार है। इस प्रकार बहुत कुछ पश्चाताप करके उसने क्षुल्लक का शरीर पोंछा और बाद में कुछ गरम जल से उसे धोकर साफ किया ॥५४-५६॥

क्षुल्लक रेवती की भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे अपनी माया समेट कर बड़ी खुशी के साथ रेवती से बोले-देवी, संसार श्रेष्ठ मेरे परम गुरु महाराज गुप्ताचार्य की धर्मवृद्धि तेरे मन को पवित्र करे, जो कि सब सिद्धियों की देने वाली है और तुम्हारे नाम से मैंने यात्रा में जहाँ-जहाँ जिनभगवान् की पूजा की है वह भी तुम्हें कल्याण की देने वाली हो ॥५७-६०॥

देवी, तुमने जिन संसार श्रेष्ठ और संसार समुद्र से पार करने वाले अमूढदृष्टि अंग को ग्रहण किया है, उसकी मैंने नाना तरह से परीक्षा की, पर उसमें तुम्हें अचल पाया तुम्हारे इस त्रिलोक पूज्य सम्यक्त्व की कौन प्रशंसा करने को समर्थ हैं? कोई नहीं। इस प्रकार गुणवती रेवती रानी की प्रशंसा कर और उसे सब हाल कहकर क्षुल्लक अपने स्थान चले गए ॥६१-६३॥

इसके बाद वरुण नृपति और रेवती रानी का बहुत समय सुख के साथ बीता। एक दिन राजा को किसी कारण से वैराग्य हो गया है। वे अपने शिवकीर्ति नामक पुत्र को राज्य सौंपकर और सब माया जाल तोड़कर तपस्वी बन गए। साधु बनकर उन्होंने खूब तपश्चर्या की और आयु के अन्त में समाधिमरण कर वे माहेन्द्र स्वर्ग में जाकर देव हुए ॥६४-६५॥

रेवती च महाराज्ञी जिनेन्द्रवचने रता। वैराग्येन समादाय जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम् ॥६६॥
क्रमेण तपसा ब्रह्म-स्वर्गे देवो महर्द्धिकः। संजातो जैनतीर्थेषु महायात्राविधायकः ॥६७॥
धर्मे श्रीजिनभाषिते शुचितरे स्वर्गोक्षसौख्यप्रदे देवेन्द्रैश्च नरेन्द्रखेचरतरैर्भक्त्या निसंसेविते।
भो भव्याः कुरुत प्रतीतिमतुलां चेदिच्छवः सत्सुखं त्यक्त्वा सर्वकुमार्गसङ्गमचिरं श्रीरेवतीवत्तराम् ॥६८॥

इति कथाकोशेऽमूढदृष्ट्यङ्गे श्रीमद्रेवतीकथा समाप्ता।

१०. श्रीजिनेन्द्रभक्तस्य कथा

नत्वा श्रीमज्जिनं भक्त्या स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्। वक्ष्ये जिनेन्द्रभक्तस्य सत्कथां सोपगूहने ॥१॥
सौराष्ट्रविषयेऽत्रैव सरसे सद्धान्विते। श्रीमात्रेमिजिनेन्द्रस्य जन्मना सुपवित्रिते ॥२॥
पुरे पाटलिपुत्राख्ये राजा जातो यशोध्वजः। तस्य राज्ञी सुसीमाख्या रूपलावण्यमण्डिता ॥३॥
तयोः पुत्रः सुवीराख्यः सप्तव्यसनतत्परः। संजातः पापतः सोपि तस्करोत्करसेवितः ॥४॥
किं करोति पिता माता कुलं जातिश्च सर्वथा। भाविदुर्गतिदुःखानां कुले जन्मापि निष्फलम् ॥५॥
अथास्ति गौडदेशे च ताम्रलिप्ताभिधा पुरी। यत्र संतिष्ठते लक्ष्मीर्दानपूजायशस्करी ॥६॥

जिनभगवान् की परम भक्त महारानी रेवती भी जिनदीक्षा ग्रहण कर और शक्ति के अनुसार तपश्चर्या और आयु के अन्त में ब्रह्मस्वर्ग में जाकर महर्द्धिक देव हुए। भव्य पुरुषों, यदि तुम भी स्वर्ग या मोक्ष-सुख को चाहते हो, तो जिस तरह श्रीमती रेवती रानी ने मिथ्यात्व छोड़ा उसी तरह तुम भी मिथ्यात्व को छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले, अत्यन्त पवित्र और बड़े-बड़े देव विद्याधर, राजा महाराजाओं से भक्तिपूर्वक ग्रहण किए हुए जैनधर्म का आश्रय स्वीकार करो ॥६६-६८॥

१०. जिनेन्द्रभक्त की कथा

स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले श्रीजिनभगवान् को नमस्कार कर मैं जिनेन्द्रभक्त की कथा लिखता हूँ, जिन्होंने कि सम्यग्दर्शन के उपगूहन अंग का पालन किया था ॥१॥

नेमिनाथ भगवान् के जन्म से पवित्र और दयालु पुरुषों से परिपूर्ण सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत एक पाटलिपुत्र नाम का शहर था। जिस समय की कथा है, उस समय वहाँ के राजा यशोध्वज थे। उनकी रानी का नाम सुसीमा था। वह बड़ी सुन्दर थी। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था सुवीर। बेचारी सुसीमा के पाप के उदय से वह महाव्यसनी और चोर हुआ। सच तो यह है जिन्हें आगे कुयोनियों के दुःख भोगना होता है, उनका न तो अच्छे कुल में जन्म लेना काम आता है और न ऐसे पुत्रों से बेचारे माता-पिता को सुख होता है ॥२-५॥

गौडदेश के अन्तर्गत ताम्रलिप्ता नाम की एक पुरी है। उसमें एक सेठ रहते थे। उनका नाम था जिनेन्द्रभक्त। जैसा उनका नाम था वैसे ही वे जिनभगवान् के भक्त थे भी। जिनेन्द्रभक्त सच्चे सम्यग्दृष्टि